



तत्त्व क्या है—इस प्रश्न पर हजारों वर्षों से चिन्तन चला आया है। यही चिन्तन 'दर्शन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जैन तत्त्वविद्या के सर्वांगीण तर्कपुरस्सर स्वरूप का संक्षिप्त एवं सरल विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत है—प्रसिद्ध दार्शनिक मुनिश्री नथमल जी द्वारा।

□ मुनिश्री नथमल
[विश्रुत विद्वान एवं प्रसिद्ध लेखक]

भगवान महावीर का तत्त्ववाद

□

इस जगत् में जो है वह तत्त्व है, जो नहीं है वह तत्त्व नहीं है। होना ही तत्त्व है, नहीं होना तत्त्व नहीं है। तत्त्व का अर्थ है—होना।

विश्व के सभी दार्शनिकों और तत्त्ववेत्ताओं ने अस्तित्व पर विचार किया। उन्होंने न केवल उस पर विचार किया, उसका वर्गीकरण भी किया। दर्शन का मुख्य कार्य है—तत्त्वों का वर्गीकरण।

नैयायिक, वैशेषिक, मीमांसा और अद्वैत—ये मुख्य वैदिक दर्शन हैं। नैयायिक सौलह तत्त्व मानते हैं। वैशेषिक के अनुसार तत्त्व छह हैं। मीमांसा कर्म-प्रधान दर्शन है। उसका तात्त्विक वर्गीकरण बहुत सूक्ष्म नहीं है। अद्वैत के अनुसार पारमार्थिक तत्त्व एक परम ब्रह्म है। सांख्य प्राचीनकाल में श्रमण-दर्शन था और वर्तमान में वैदिक दर्शन में विलीन है। उसके अनुसार तत्त्व पञ्चीस है। चार्वाक दर्शन के अनुसार तत्त्व चार हैं।

मालुंकापुत्र भगवान बुद्ध का शिष्य था। उसने बुद्ध से पूछा—मरने के बाद क्या होता है? आत्मा है या नहीं? यह विश्व सान्त है या अनन्त?

बुद्ध ने कहा—यह जानकर तुम्हें क्या करना है?

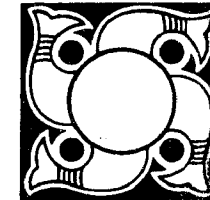
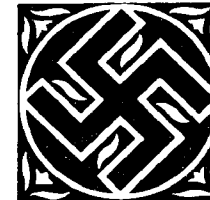
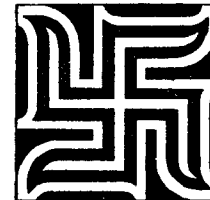
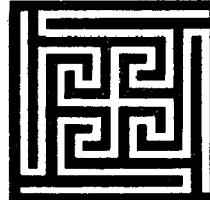
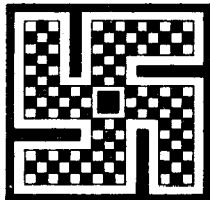
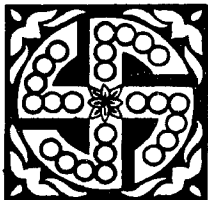
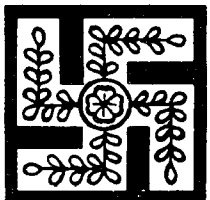
उसने कहा—क्या करना है, यह जानना चाहते हैं? मुझे आप उनका उत्तर दें और यदि उत्तर नहीं देते हैं तो मैं आपके दर्शन को छोड़ दूसरे दर्शन में जाने की बात सोचूँ। या तो आप कहें कि मैं इन विषयों को नहीं जानता और यदि जानते हैं तो मुझे उत्तर दें। मैं सत्य को जानने के लिए आपके शासन में दीक्षित हुआ था। किन्तु मुझे मेरी जिज्ञासा का उत्तर नहीं मिल रहा है।

बुद्ध ने कहा—मैंने कब कहा था कि मैं सब प्रश्नों के उत्तर दूँगा और तुम मेरे मार्ग में चले आओ।

मालुंकापुत्र बोला—आपने कहा तो नहीं था।

बुद्ध ने कहा—फिर, तुम मुझे आँखें क्यों दिखा रहे हो? देखो, एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति ने बाण मारा। वह बाण से विध गया। अब कोई व्यक्ति आता है, बैध आता है और कहता है बाण को निकालें और घाव को ठीक करें। किन्तु वह व्यक्ति कहता है कि मैं तब तक बाण नहीं निकलवाऊँगा जब तक कि यह पता न लग लाये कि बाण किसने फेंका है? फेंकने वाला कितना लम्बा-चौड़ा है? वह कितना शक्तिशाली है? वह किस वर्ण का है? बाण क्यों फेंका गया? किस धनुष्य से फेंका गया? वह धनुष्य कैसा है? तूणीर कैसा है? प्रत्यंचा कैसी है? ये सारी बातें मुझे जब तक ज्ञात नहीं हो जातीं, तब तक मैं इस बाण को नहीं निकलवाऊँगा। बोलो, इसका अर्थ क्या होगा?

मालुंकापुत्र बोला—वह मर जाएगा। बाण के निकलने से पहले ही मर जाएगा। वह जीवित नहीं रह सकेगा।



बुद्ध ने कहा—इसीलिए मैं कहता हूँ कि बाण को निकालने की जरूरत है। बाण किसने बनाया, कहाँ से आया, किस प्रकार से फेंका गया, किस धनुष्य से फेंका गया, इन कल्पनाओं में उलझने की तुम्हें कोई जरूरत नहीं है। जिन बातों में उलझने की जरूरत है, उन्हीं में उलझो। दुःख क्या है? दुःख का हेतु क्या है? निर्वाण क्या है और निर्वाण का हेतु क्या है? ये चार आर्य-सत्य हैं। इन्हीं को जानने का प्रयत्न करो!

पूर्व प्रतिपादित वर्गीकरणों और मीमांसाओं के सन्दर्भ में मैं भगवान महावीर के तात्त्विक वर्गीकरण का विश्लेषण करूँगा। प्रारम्भ में एक धारा की ओर मैं इंगित करना चाहता हूँ। वर्तमान युग के कुछ इतिहासज्ञ और कुछ दार्शनिक जैनदर्शन को वैशेषिक, सांख्य आदि दर्शनों का ऋणी मानते हैं। कुछ विद्वान् लिखते हैं कि परमाणुवाद महर्षि कणाद की देन है। जैनदर्शन ने उसका अनुसरण किया है। कुछ विद्वान् लिखते हैं, जैनदर्शन सांख्यदर्शन का ही रूपान्तर है। उसका तत्त्ववाद मौलिक नहीं है। ये धारणाएँ क्यों चलती हैं? इनका रहस्य खोजना जरूरी है। वे विद्वान् लेखक या तो इतिहास के कक्ष तक पहुँचने का तीव्र प्रयत्न नहीं करते या वे साम्प्रदायिक भावना को पुष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं। दोनों में से एक बात अवश्य है।

मालिक ने नौकर से कहा—जाओ, बगीचे में पानी सींच आओ। नौकर बोला—महाशय! इसकी जरूरत नहीं है। वर्षा हो रही है तब पानी सींचकर क्या करूँ? मालिक ने कहा—वर्षा से डरते हो तो छाता ले जाओ। पानी तो सींचना ही होगा। अब आप देखिए, वर्षा हो रही है, फिर पानी सींचने की क्या जरूरत है? कोई नहीं। किन्तु मालिक कह रहा है कि वर्षा हो रही है तो होने दो। भीगने का डर लगता है तो छाता ले जाओ। पर पानी सींचना ही होगा। उसके सामने छाते की उपयोगिता है। वह उसी को समझ रहा है। वर्षा से जो सहज सिंचन हो रहा है, उसे या तो वह समझ नहीं पा रहा है या जान-बुझकर नकार रहा है। मुझे लगता है कि यह एक प्रवाह है कि छाते की बात सुझाई जा रही है और पानी स्वयं सिंचित हो रहा है, उसे स्वीकृत नहीं किया जा रहा है।

महर्षि कणाद ने वैशेषिक सूत्र भगवान महावीर के बाद लिखा था। सांख्यदर्शन का विकास भगवान पार्श्व के बाद और भगवान महावीर के आस-पास हुआ। किन्तु तत्त्व के विषय में सांख्य और जैनदर्शन का दृष्टिकोण स्वतन्त्र है। इसलिए तत्त्व के वर्गीकरण में सांख्यदर्शन जैनदर्शन का आभारी है या जैनदर्शन सांख्यदर्शन का आभारी है, यह नहीं कहा जा सकता। सांख्यदर्शन सृष्टिवादी है और सृष्टिवाद की कल्पना उसके तात्त्विक वर्गीकरण के साथ जुड़ी हुई है। जैनदर्शन द्रव्य-पर्यायवादी है। उसके वर्गीकरण में कुछ तत्त्व ऐसे हैं जो सांख्य के प्रकृति और पुरुष इन दोनों से सर्वथा भिन्न हैं।

भगवान महावीर ने पाँच अस्तिकायों का प्रतिपादन किया। राजगृह के बाहर गुणशिलक नाम का चैत्य था। उसकी थोड़ी दूरी पर परिव्राजकों का एक 'आवसथ' था। उसमें कालोदायी आदि अनेक परिव्राजक रहते थे। एक बार भगवान महावीर राजगृह पधारे, गुणशिलक चैत्य में ठहरे। राजगृह में 'महुक' नामका श्रमणोपासक रहता था। वह भगवान को बंदन करने के लिए आ रहा था। परिव्राजकों ने उसे देखा, अपने पास बुलाया और कहा—तुम्हारे धर्माचार्य श्रमण महावीर पाँच अस्तिकायों का प्रतिपादन करते हैं। तुम जानते हो, देखते हो?

महुक ने कहा—जो पदार्थ कार्य करता है, उसे हम जानते हैं, देखते हैं और जो पदार्थ कार्य नहीं करता, उसे हम नहीं जानते, नहीं देखते हैं।

परिव्राजक बोले—तुम कैसे श्रमणोपासक हुए जो तुम तुम्हारे धर्माचार्य के द्वारा प्रतिपादित अस्तिकायों को नहीं जानते, नहीं देखते।

उनका व्यंग्य सुन महुक बोला—आयुष्मान्! क्या हवा चल रही है?

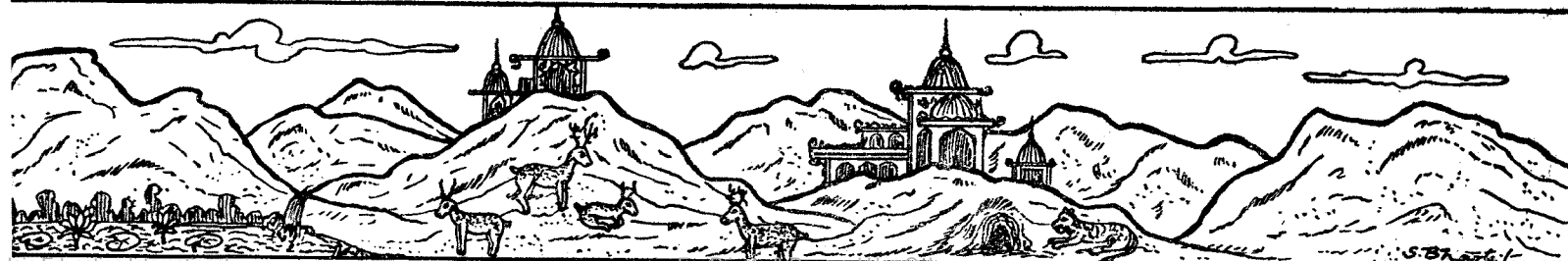
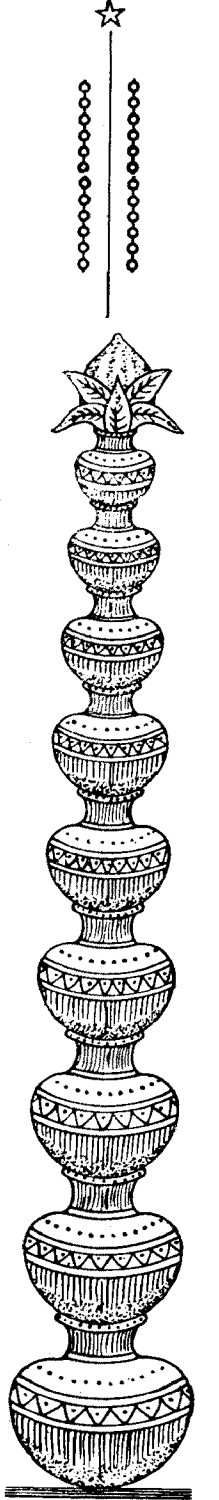
हाँ चल रही है।

क्या चलती हुई हवा का आप रूप देख रहे हैं?

नहीं।

आयुष्मान्! हम हवा को नहीं देखते किन्तु हिलते हुए पत्तों को देखकर हम जान लेते हैं कि हवा चल रही है।

फूलों की भीनी सुगन्ध आ रही है?





हाँ, आ रही है।

सुगन्ध के परमाणु हमारी नासा में प्रविष्ट हो रहे हैं ?

हाँ, हो रहे हैं।

क्या आप नासा में प्रविष्ट सुगन्ध के परमाणुओं का रूप देख रहे हैं ?

नहीं।

आयुष्मान् ! अरणि की लकड़ी में अग्नि है ?

हाँ, है।

क्या आप अरणि में छिपी हुई अग्नि का रूप देख रहे हैं ?

नहीं।

आयुष्मान् ! क्या समुद्र के उस पार रूप है।

हाँ, है।

क्या आप समुद्र के पारवर्ती रूपों को देख रहे हैं ?

नहीं।

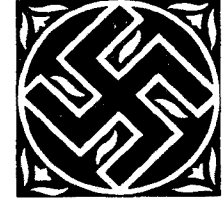
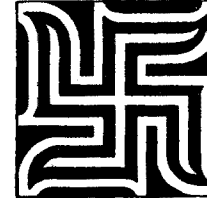
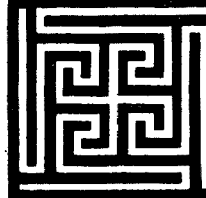
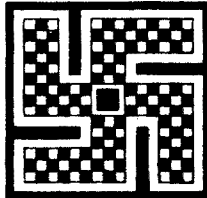
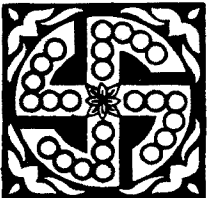
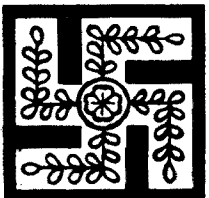
आयुष्मान् ! मैं या आप, कोई भी परोक्षदर्शी सूक्ष्म, व्यवहित और दूरवर्ती वस्तु को नहीं जानता, नहीं देखता किन्तु वह सब नहीं होता, ऐसा नहीं है। हमारे ज्ञान की अपूर्णता द्रव्य के अस्तित्व को मिटा नहीं सकती। यदि मैं पाँचों अस्तिकायों को साक्षात् नहीं जानता-देखता, इसका अर्थ यह नहीं होता है कि वे नहीं हैं। भगवान् महावीर ने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा उनका साक्षात् किया है, उन्हें जाना-देखा है, इसीलिए वे उनका प्रतिपादन कर रहे हैं।

इस प्रसंग से जाना जा सकता है कि पंचास्तिकाय का वर्गीकरण अन्य तीर्थिकों के लिए कुतूहल का विषय था। इस विषय में वे जानते नहीं थे। उन्होंने इस विषय में कभी सुना-पढ़ा नहीं था। यह उनके लिए सर्वथा नया विषय था। महुक के तर्कपूर्ण उत्तर से भी वे अस्तिकाय का मर्म समझ नहीं पाये।

कुछ दिन बाद फिर परिव्राजकों की गोष्ठी जुड़ी। उसमें कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी आदि अनेक परिव्राजक सम्मिलित थे। उनमें फिर महावीर के पंचास्तिकाय पर चर्चा चली। कालोदायी ने कहा—श्रमण महावीर पाँच अस्तिकायों का प्रतिपादन करते हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। वे कहते हैं कि चार अस्तिकाय अजीवकाय हैं। एक जीवास्तिकाय जीव है। चार अस्तिकाय अमूर्त हैं। एक पुद्गलास्तिकाय मूर्त है। यह कैसे हो सकता है ? उस समय भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य गौतम राजगृह से गुण-शिलक चैत्य की ओर जा रहे थे। उन परिव्राजकों ने गौतम को देखा और वे परस्पर बोले—देखो, वे गौतम जा रहे हैं। महावीर का इनसे अधिक अधिकृत व्यक्ति कौन मिलेगा ? अच्छा है हम उनके पास चलें और अपनी जिज्ञासा को उनके सामने रखें। उस समय एक संन्यासी दूसरे संन्यासी के पास मुक्तभाव से चला जाता, बुला लेता, अपने स्थान में आमन्त्रित कर लेता—इसमें कोई कठिनाई नहीं थी। मुक्तभाव और मुक्त वातावरण था। इसलिए परिव्राजकों को गौतम के पास जाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। वे सब उठे और गौतम के पास पहुँच गये। उन्होंने कहा—तुम्हारे धर्माचार्य ने पंचास्तिकाय का प्रतिपादन किया है। क्या यह युक्तिसंगत है ?

गौतम ने उनसे कहा—आयुष्मान् परिव्राजको ! हम अस्ति को नास्ति नहीं कहते और नास्ति को अस्ति नहीं कहते। हम सम्पूर्ण अस्तिभाव को अस्ति कहते हैं और सम्पूर्ण नास्तिभाव को नास्ति कहते हैं। तुम स्वयं इस पर मनन करो और इसे ध्यान से देखो।

गौतम परिव्राजकों को संक्षिप्त उत्तर देकर आगे चले गये। कालोदायी ने सोचा—पंचास्तिकाय के विषय में हमने महुक को पूछा, फिर गौतम को पूछा। उन्होंने अपने-अपने ढंग से उत्तर भी दिये। पर जब महावीर स्वयं यहाँ उपस्थित हैं, तब क्यों न हम महावीर से ही उस विषय में पूछें। कालोदायी के पैर भी महावीर की दिशा में बढ़ गये। उस समय भगवान् महावीर महाकथा कर रहे थे। कालोदायी वहाँ पहुँचा। भगवान् ने उसे देखकर कहा—कालोदायी ! तुम लोग गोष्ठी कर रहे थे और उस गोष्ठी में मेरे द्वारा प्रतिपादित पंचास्तिकाय के विषय में चर्चा कर रहे थे। क्यों यह ठीक है न ?



हाँ, भन्ते ! वैसा ही है, जैसा आप कह रहे हैं ।

कालोदायी ! तुम्हारी जिज्ञासा है कि मैं पंचास्तिकाय का प्रतिपादन करता हूँ, वह कैसे ? कालोदायी ! तुम्हीं बताओ, पंचास्तिकाय हैं या नहीं ? यह प्रश्न किसको होता है, चेतन को या अचेतन को ? आत्मा को या अनात्मा को ? भन्ते ! आत्मा को होता है ।

कालोदायी ! जिसे तुम आत्मा कहते हो उसे मैं जीवास्तिकाय कहता हूँ । जीव चेतनामय प्रदेशों का अविभक्त काय है, इसलिए मैं उसे जीवास्तिकाय कहता हूँ ।

कालोदायी ! तुम मेरे पास आये हो, कैसे आये ?

भन्ते ! चलकर आया हूँ ।

क्या तुम जानते हो कि मछली पानी में तैरती है ?

हाँ, भन्ते ! जानता हूँ ।

तैरने की शक्ति मछली में है या पानी में ?

भन्ते ! तैरने की शक्ति मछली में है ।

तो क्या वह पानी के बिना तैर सकती है ?

नहीं भन्ते ! ऐसा नहीं होता ।

मछली को तैरने के लिए पानी की अपेक्षा है, उसी प्रकार जीव और पुद्गल को गति करने के लिए गति तत्त्व की अपेक्षा है । जो द्रव्य जीव और पुद्गल की गति में अपेक्षित सहयोग करता है, उसे मैं धर्मास्तिकाय कहता हूँ । मछली पानी के बाहर आती है और भूमि पर आ स्थिर हो जाती है । स्थिर होने की शक्ति मछली में है किन्तु भूमि उसे स्थिर होने में सहायता देती है । जीव और पुद्गल में स्थिति की शक्ति है पर उनकी स्थिति में जो अपेक्षित सहयोग करता है, उस स्थिति तत्त्व को मैं अधर्मास्तिकाय कहता हूँ ।

गति तत्त्व और स्थिति तत्त्व दोनों अस्तिकाय हैं । इनकी अविभक्त प्रदेश-राशि आकाश के बृहद् भाग में फैली हुई है । आकाश के जिस खण्ड में ये हैं, वहाँ गति है, स्पंदन है, जीवन है और परिवर्तन है । इस आकाश-खण्ड को मैं लोक कहता हूँ । इससे परे जो आकाश-खण्ड है, उसे मैं 'अलोक' कहता हूँ । लोक का आकाश-खण्ड सान्त है, ससीम है । अलोक का आकाश-खण्ड अनन्त है, असीम है ।

तुम देख रहे हो कि यह पेड़, यह मनुष्य, यह मकान कहीं न कहीं टिके हुए हैं । तुमने देखा है कि पानी घड़े में टिकता है । घड़ा फूट जाता है, पानी ढुल जाता है । पानी को टिकने के लिए कोई आधार चाहिए । इसी प्रकार द्रव्यों को भी आधार की अपेक्षा होती है । एक द्रव्य अस्तित्व में है, उसमें आधार देने की क्षमता है, उसे मैं आकाशास्तिकाय कहता हूँ ।

तुम देख रहे हो सामने एक पेड़ है । क्या देख रहे हो ?

भन्ते ! उसका हरा रंग देख रहा हूँ ।

क्या उसकी सुगन्ध नहीं आ रही है ?

भन्ते ! आ रही है ।

क्या इसमें रस नहीं है ?

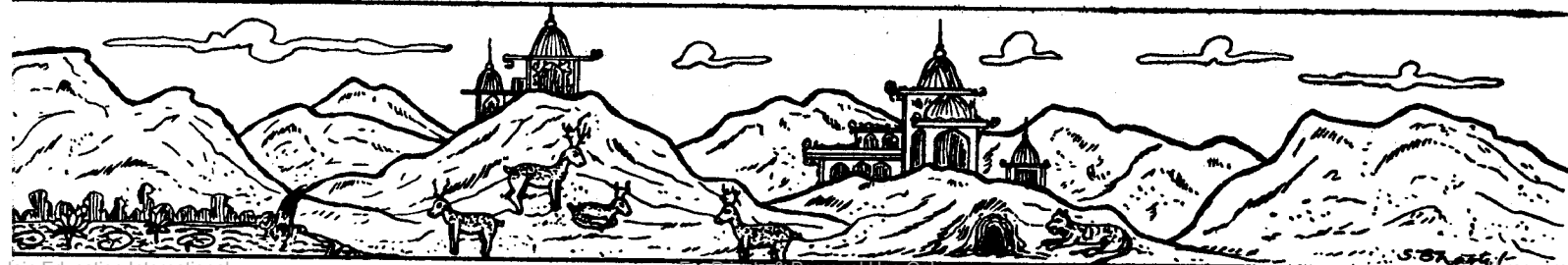
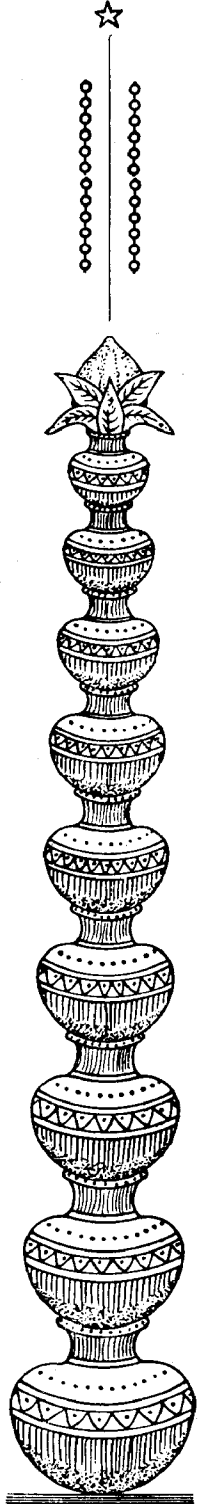
भन्ते ! है ।

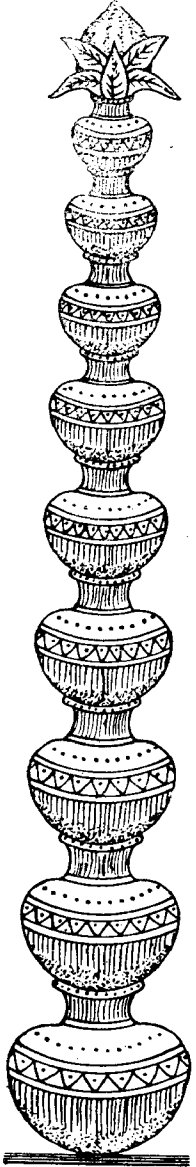
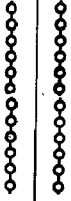
इसकी कोमल पत्तियों का स्पर्श मन को आकर्षित नहीं करता ?

भन्ते ! करता है ।

कालोदायी ! जिसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श होता है, उसे मैं पुद्गलास्तिकाय कहता हूँ ।

मैंने अस्तिकायों को जाना है, देखा है । इसीलिए मैं पाँच अस्तिकायों का प्रतिपादन करता हूँ । इनका प्रतिपादन मैं किसी शास्त्र के आधार पर नहीं कर रहा हूँ, किन्तु अपने प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर कर रहा हूँ ।





महावीर का तात्त्विक प्रवचन सुनकर कालोदायी का मन समाहित हो गया।

यह पंचास्तिकाय का वर्गीकरण मौलिक है। भारतीय दर्शनों के तात्त्विक वर्गीकरण को सामने रखकर उनका तुलनात्मक अध्ययन करने वाला यह कहने का साहस नहीं करेगा कि यह वर्गीकरण दूसरों से ऋण-प्राप्त है। कुछ विद्वान् स्वल्प अध्ययन के आधार पर विचित्र-सी धारणाएँ बना लेते हैं और उन्हें आगे बढ़ाते चले जाते हैं। यह बहुत ही गम्भीर चिन्तन का विषय है कि विद्वद् जगत् में ऐसा हो रहा है।

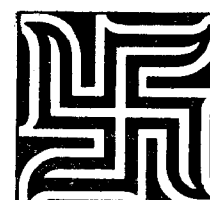
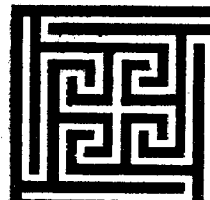
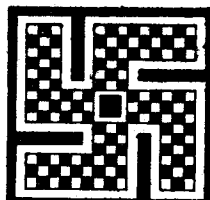
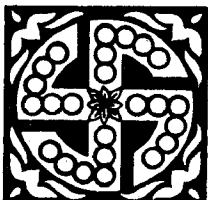
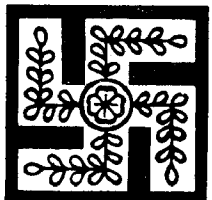
कहीं न कहीं कोई आवरण अवश्य है। आवरण के रहते सचाई प्रगट नहीं होती। मुझे एक घटना याद आ रही है। एक राजकुमारी को संगीत की शिक्षा देनी थी। वीणा-वादन और संगीत के लिए राजकुमार उदयन का नाम सूर्य की भाँति चमक रहा था। राजा ने कूट-प्रयोग से उदयन को उपलब्ध कर लिया। राजा राजकुमारी को संगीत सिखाना चाहता था और दोनों को सम्पर्क से बचाना भी चाहता था। इसलिए दोनों के बीच में यवनिका बाँध दी। दोनों के मनों में भी यवनिका बाँधने की चेष्टा की। उदयन से कहा गया—राजकुमारी अन्धी है। वह तुम्हारे सामने बैठने में सकुचाती है। अतः वह यवनिका के भीतर बैठेगी। राजकुमारी से कहा गया—उदयन कोढ़ी है। वह तुम्हारे सामने बैठने में सकुचाता है। अतः वह यवनिका के बाहर बैठेगा। शिक्षा का क्रम चालू हुआ और कई दिनों तक चलता रहा। एक दिन उदयन संगीत का अभ्यास करा रहा था। राजकुमारी बार-बार स्खलित हो रही थी। उदयन ने कई बार टोका, फिर भी राजकुमारी उसके स्वरों को पकड़ नहीं सकी। उदयन कुछ क्रुद्ध हो गया। उसने आवेश में कहा—जरा संभल कर चलो। कितनी बार बता दिया, फिर भी ध्यान नहीं देती हो। आखिर अन्धी जो हो। राजकुमारी के मन पर चोट लगी। वह बौखला उठी। उसने भी आवेश में कहा—कोढ़ी! जरा संभलकर बोलो! उदयन ने सोचा, कोढ़ी कौन है? मैं तो कोढ़ी नहीं हूँ। फिर राजकुमारी ने कोढ़ी कैसे कहा? राजकुमारी ने भी इसी प्रकार सोचा—मैं तो अन्धी नहीं हूँ। फिर उदयन ने अन्धी कैसे कहा? सचाई को जानने के लिए दोनों तड़प उठे। यवनिका को हटाकर देखा—कोई अन्धी नहीं है और कोई कोढ़ी नहीं है। बीच का आवरण यह धारणा बनाये हुए था कि यवनिका के इस पार अन्धापन है और उस पार कोढ़। आवरण हटा और दोनों बातें हट गईं। मुझे लगता है जैन-दर्शन की मौलिकता को समझने में भी कोई आवरण बीच में आ रहा है। अब उसे हटाना होगा।

परमाणुवाद का विकास वैशेषिकदर्शन से हुआ है, फिर जैनदर्शन ने उसे अपनाया है। चेतन और अचेतन—इस द्वैत का प्रतिपादन सांख्यदर्शन ने किया है, फिर जैनदर्शन ने उसे अपनाया है। यह सब ऐसे प्रस्तुत किया जा रहा है कि मानो जैनदर्शन का अपना कोई मौलिक रूप है ही नहीं। वह सारा का सारा ऋण लेकर अपना काम चला रहा है। सत्य यह है कि परमाणु और पुद्गल के बारे में जितना गम्भीर चिन्तन जैन आचार्यों ने किया है, उतना किसी भी दर्शन के आचार्यों ने नहीं किया। सांख्यदर्शन की प्रकृति और उसका विस्तार एक पुद्गलास्तिकाय की परिधि में आ जाता है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय का अस्तित्व उससे सर्वथा स्वतन्त्र है। जैनदर्शन की प्राचीनता की अस्वीकृति, उसके आधारभूत आगम-सूत्रों के अध्ययन की परम्परा के अभाव और जैन विद्वानों की उपेक्षावृत्ति ने ऐसी स्थिति का निर्माण किया है कि जैनदर्शन का देय उसी के लिए ऋण के रूप में समझा जा रहा है।

भगवान महावीर ने वस्तु-मीमांसा और मूल्य-मीमांसा—दोनों दृष्टियों से तत्त्व का वर्गीकरण किया। वस्तु-मीमांसा की दृष्टि से उन्होंने पंचास्तिकाय का प्रतिपादन किया और मूल्य-मीमांसा की दृष्टि से उन्होंने नौ तत्त्वों का निरूपण किया।

चार्वाक का तात्त्विक वर्गीकरण केवल वस्तु-मीमांसा की दृष्टि से है। उसके अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—ये चार तत्त्व हैं। उनसे निर्मित यह जगत् भौतिक और दृश्य है। अदृश्य सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं है।

न्यायदर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम का तात्त्विक वर्गीकरण एक प्रकार से प्रमाण-मीमांसा है। वैशेषिक-दर्शन का तात्त्विक वर्गीकरण नैयायिकदर्शन की अपेक्षा वास्तविक है। उसमें गुण, कर्म, सामान्य और विशेष की व्यवस्थित व्याख्या मिलती है। जैनदर्शन की दृष्टि से इनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। ये द्रव्य के ही धर्म हैं। सांख्य-दर्शन का तात्त्विक वर्गीकरण सृष्टिक्रम का प्रतिपादन करता है। इनके पञ्चीस तत्त्वों में मौलिक तत्त्व दो हैं—प्रकृति और पुरुष। शेष तेईस तत्त्व प्रकृति के विकार हैं। उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। पंचास्तिकाय के वर्गीकरण में पाँचों



द्रव्यों का स्वतंत्र अस्तित्व है। कोई भी द्रव्य किसी का गुण या अवान्तर विभाग नहीं है। गति, स्थिति, अवगाह, चैतन्य तथा वर्ण, गंध, रस और स्पर्श—ये विशिष्ट गुण हैं। इन्हीं के द्वारा उनकी स्वतंत्र सत्ता है। इस वर्गीकरण में न प्रमाण-मीमांसा है, न गुणों की स्वतंत्र सत्ता की स्वीकृति और न सृष्टि का क्रम। इसमें दृश्य और अदृश्य, भौतिक और अभौतिक अस्तित्वों का प्रतिपादन है। इस दृष्टि से यह वर्गीकरण मौलिक और वास्तविक है।

वस्तु-मीमांसा और मूल्य-मीमांसा का वर्गीकरण एक साथ किया होता तो वह नैयायिक, वैशेषिक और सांख्य दर्शन जैसा मिला-जुला वर्गीकरण होता। उसकी वैज्ञानिकता समाप्त हो जाती। पंचास्तिकाय के कार्य के विषय में संक्षिप्त चर्चा हो चुकी है। फिर भी उस विषय में महावीर और गौतम का एक संवाद मैं प्रस्तुत करना चाहूँगा। गौतम ने पूछा—भंते ! धर्मास्तिकाय से क्या होता है ? भगवान ने कहा—गौतम ! आदमी चल रहा है, हवा चल रही है, श्वास चल रहा है, वाणी चल रही है, आँखें पलक झपका रही हैं। यह सब धर्मास्तिकाय के सहारे से हो रहा है। यदि वह न हो तो निमेष और उन्मेष नहीं हो सकता। यदि वह न हो तो आदमी बोल नहीं सकता। यदि वह न हो तो आदमी सोच नहीं सकता। यदि वह नहीं होता तो सब कुछ पुतली की तरह स्थिर और स्पन्दनहीन होता।

उपनिषद् के ऋषियों ने कहा कि यदि आकाश नहीं होता तो आनन्द नहीं होता। आनन्द कहाँ होता है ? आकाश है, तभी तो आनन्द है। ठीक इसी भाषा में भगवान महावीर ने कहा—धर्मास्तिकाय नहीं होता तो स्पन्दन भी नहीं होता। तुम पृष्ठ रहे हो और मैं उत्तर दे रहा हूँ, यह इसीलिए हो रहा है कि धर्मास्तिकाय है। यदि वह नहीं होता तो न तुम पृष्ठ सकते और न मैं उत्तर दे सकता। हम मिलते भी नहीं। जो जहाँ है, वह वहीं होता। हमारा मिलन, वाणी का मिलन, शरीर का मिलन, वस्तु का मिलन जो हो रहा है, एक वस्तु एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ-जा रही है, यह सब उसी गति-तत्त्व के माध्यम से हो रहा है। वह अपना सहारा इतने उदासीन भाव से दे रहा है कि किसी को कोई शिकायत नहीं है। उसमें चेतना नहीं है, इसलिए न उपकार का अहंकार है और न कोई पक्षपात। वह स्वाभाविक ढंग से अपना कार्य कर रहा है।

गौतम ने पूछा—भंते ! अधर्मास्तिकाय से होता है ?

भगवान ने कहा—तुम अभी ध्यान कर आए हो। उसमें तुम्हारा मन कहाँ था ?

भंते ! कहीं नहीं। मैंने मन को निरुद्ध कर दिया था।

भगवान बोले—यह निरोध, एकाग्रता, स्थिरता अधर्मास्तिकाय के सहारे होता है। यदि वह नहीं होता तो न मन एकाग्र होता, न मौन होता और न तुम आँख मूँदकर बैठ सकते। तुम चलते ही रहते। इस अनन्त आकाश में अविराम चलते रहते। जिस बिन्दु से चले उस पर फिर कभी नहीं पहुँच पाते। अनन्त आकाश में खो जाते। किन्तु गति के प्रतिकूल हमारी स्थिति है, इसीलिए हम कहीं टिके हुए हैं। इस कार्य में अधर्मास्तिकाय वैसे ही उदासीन भाव से हमारा सहयोग कर रहा है, जैसे गति में धर्मास्तिकाय।

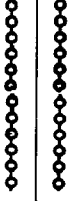
गौतम ने पूछा—आकाश में क्या होता है ?

भगवान ने कहा—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय—इन सबका अस्तित्व आकाश के अस्तित्व पर निर्भर है। वह उन सबको आधार दे रहा है। जिस आकाश-खण्ड में धर्मास्तिकाय है, उसी में अधर्मास्तिकाय है, उसी में जीवास्तिकाय और उसी में पुद्गलास्तिकाय है। आकाश की यह अवकाश देने की क्षमता नहीं होती तो ये एक साथ नहीं होते। उसके अभाव में इन सबका सद्भाव नहीं होता।

गौतम ने पूछा—भंते ! जीव क्या करता है ?

भगवान ने कहा—वह ज्ञान करता है, अनुभव करता है। उसके पास इन्द्रियाँ हैं। वह देखता है, सुनता है, सूँघता है, चखता है और छूता है। सामने हरा रंग है। आँख ने देखा, उसका काम हो गया। पत्तियों की खनखनाहट हो रही है। कान ने सुना, उसका काम समाप्त। हवा के साथ आने वाली सुगंध का नाक ने अनुभव किया, उसका काम समाप्त। जीभ ने फल का रस चखा और उसका काम पूरा हो गया। हाथ ने तने को छुआ और उसका काम पूरा हो गया। किन्तु कुल मिलाकर वह क्या है ? यह न आँख जानती है और न कान। इनके बिखरे हुए अनुभवों





को समेट कर संकलन करने वाला जो है, वह है मन । उसके लिए हरा रंग, पत्तियाँ, पुष्प, फल और छाल—ये अलग-अलग नहीं हैं किन्तु एक ही पेड़ के विभिन्न रूप हैं । इन्द्रियों के जगत् में वे अलग-अलग होते हैं और मन के जगत् में वे सब अभिन्न होकर पेड़ बन जाते हैं । मन सोचता है, मनन करता है, कल्पना करता है और स्मृति करता है । जीव के पास बुद्धि है । वह मन के द्वारा प्राप्त सामग्री का विवेक करती है, निर्णय देती है और उसमें कुछ अद्भुत क्षमताएँ हैं । वह इन्द्रिय और मन से सामग्री प्राप्त किये बिना ही कुछ विशिष्ट बातें जान लेती है । ये (इन्द्रिय, मन और बुद्धि) सब जीव की चेतना के भौतिक संस्करण हैं । इसलिए ये पुद्गलों के माध्यम से एक को जानते हैं । ये ज्ञेय का साक्षात्कार नहीं कर सकते । शुद्ध चेतना ज्ञेय का साक्षात्कार करती है । वह किसी माध्यम से नहीं जानती । इसीलिए हम उसे प्रत्यक्ष ज्ञान या अतीन्द्रिय ज्ञान कहते हैं । यह ज्ञान का सम्पूर्ण क्षेत्र जीव के अधिकार में है ।

गौतम ने पूछा—भंते ! पुद्गल का क्या कार्य है ?

भगवान् ने कहा—आदमी श्वास लेता है, सोचता है, बोलता है, खाता है—यह सब पुद्गल के आधार पर हो रहा है । श्वास की वर्गणा (पुद्गल समूह) है, इसलिए वह श्वास लेता है । मन की वर्गणा है इसलिए वह सोचता है । भाषा की वर्गणा है, इसलिए वह बोलता है । आहार की वर्गणा है, इसलिए वह खाता है । यदि ये वर्गणाएँ नहीं होतीं तो न कोई श्वास लेता, न कोई सोचता, न कोई बोलता और न कोई खाता । जितने दृश्य तत्त्व हैं, वे सब पुद्गल की वर्गणाएँ हैं । पुद्गलास्तिकाय का स्वरूप एक है, फिर भी कार्य के आधार पर उसकी अनेक वर्गणाएँ हैं । उसे एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है । एक ग्वाला भेड़ों को चराता था । वे अनेक लोगों की थीं । उसे गिनती करने में कठिनाई होती थी । उसने एक रास्ता निकाला । एक-एक मालिक की भेड़ों का एक-एक वर्ग बना दिया और उन्हें एक-एक रंग से रंग दिया । उसे सुविधा हो गई । यह वर्गणाओं का विभाजन भी कार्य-बोध की सुविधा के आधार पर किया गया है । जीव की जितनी भी प्रवृत्ति होती है, वह पुद्गल की सहायता से होती है । यदि वह नहीं होता तो कोई प्रवृत्ति नहीं होती । सब कुछ निष्क्रिय और निर्वीर्य होता ।



विणएण णरो, गंधेण चंदणं सोमयाइ रयणियरो ।

महुररसेण अमयं, जणपियत्तं लहइ भुवणे ॥

—धर्मरत्नप्रकरण, १ अधिकार

जैसे सुगन्ध के कारण चंदन, सौम्यता के कारण चन्द्रमा और मधुरता के कारण अमृत जगत्प्रिय हैं, ऐसे ही विनय के कारण मनुष्य लोगों में प्रिय बन जाता है ।

